कब खत्म होगा पास–फेल का चक्कर

❑ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

चन्द असामाजिक लोगों की करतूत तथा कुछ शिक्षकों की लापरवाही ने राजस्थान के संपूर्ण शिक्षा जगत को परेशानी में डाल दिया । माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान को करोड़ों की हानि हुई। छात्रों व उनके अभिभावकों को होने वाली परेशानी का तो आंकलन ही नहीं किया जा सकता। प्रश्न-पत्र 'आउट' होने का प्रसंग काफी चर्चा में रहा । फिर भी परीक्षाएं किसी प्रकार पूरी हो गयीं। मूल्यांकन कार्य पूरा होकर परीक्षा परिणाम भी आ गया । हर वर्ष की तरह लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थी असफल घोषित हो गये । आधे आगे बढ़ेंगे तो आधे लुढ़क गये । पहली कक्षा से ही सांप सीढ़ी का खेल खेलते खेलते दसवें या बाहरवें घर में पहुंचे विद्यार्थियों में 50 प्रतिशत तक को वहीं रोक लेना क्या चिन्ता का विषय नहीं है ?

वर्तमान परीक्षा प्रणाली तथा परीक्षा परिणामों को लेकर हमारे यहां चिन्तन निरन्तर होता रहा है । भारत के स्वतंत्र होने से पूर्व ही परीक्षा प्रणाली की आलोचना होने लग गई थी । 1952 में गठित माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने परीक्षा प्रणाली की विस्तृत समीक्षा की थी। आयोग का मानना था कि परीक्षा के कारण विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धियां ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गई थीं। विद्यार्थी परीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय वस्तु को पढ़ने में ही रुचि लेते थे । विद्यालय की वे गतिविधियां जिनका संबंध परीक्षा से नहीं होता था असफल हो जाती थी ।

उपरोक्त स्थिति को बदलने के उद्देश्य से माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कई सुझाव दिये । 1958 में परीक्षा सुधार का व्यापक कार्यक्रम शुरू किया गया । मूल्यांकन की नवीन तकनीकों का व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया । मगर वर्तमान में स्थिति 1952 की तुलना में बदतर ही है, बेहतर नहीं है ।

1966 में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन) ने भी इस विषय में छानबीन की थी । आयोग का मानना था कि जनता की परेशानी का मुख्य कारण माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की परीक्षा में बहुत अधिक विद्यार्थियों का फेल हो जाना था । आयोग ने विभिन्न माध्यमिक शिक्षा बोर्डों के परीक्षा-परिणामों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि दसवीं व बारहवीं कक्षा में बैठने वाले 45 से 60 प्रतिशत विद्यार्थी फेल हो जाते थे । यह परिणाम शिक्षा व परीक्षा की दुरवस्था को प्रदर्शित करने वाले थे । ऐसा आयोग का मानना था । परीक्षा परिणाम की स्थिति आज भी उससे कोई अधिक भिन्न नहीं है ।

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के परीक्षा परिणाम की न्यूनता का दोष उच्च प्राथमिक स्तर पर ठीक तरह छंटनी नहीं होना बताया जाता रहा है । अत: गत वर्ष से हमने आठवीं बोर्ड के नाम से एक और फन्दा विद्यार्थियों के गले में डाल दिया है। पहले आठवीं बोर्ड कक्षा का परीक्षा परिणाम 95 प्रतिशत तक रहता था। उस स्थिति पर कटाक्ष करते हुए प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के एक पूर्व निदेशक ने प्रश्न किया था कि क्या हम मात्र 5 प्रतिशत विद्यार्थियों को फेल करने के उद्देश्य से ही परीक्षा आयोजित करते हैं ?

आठवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा करने का हमारी शिक्षा प्रणाली पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह तो भविष्य ही बताएगा। मगर

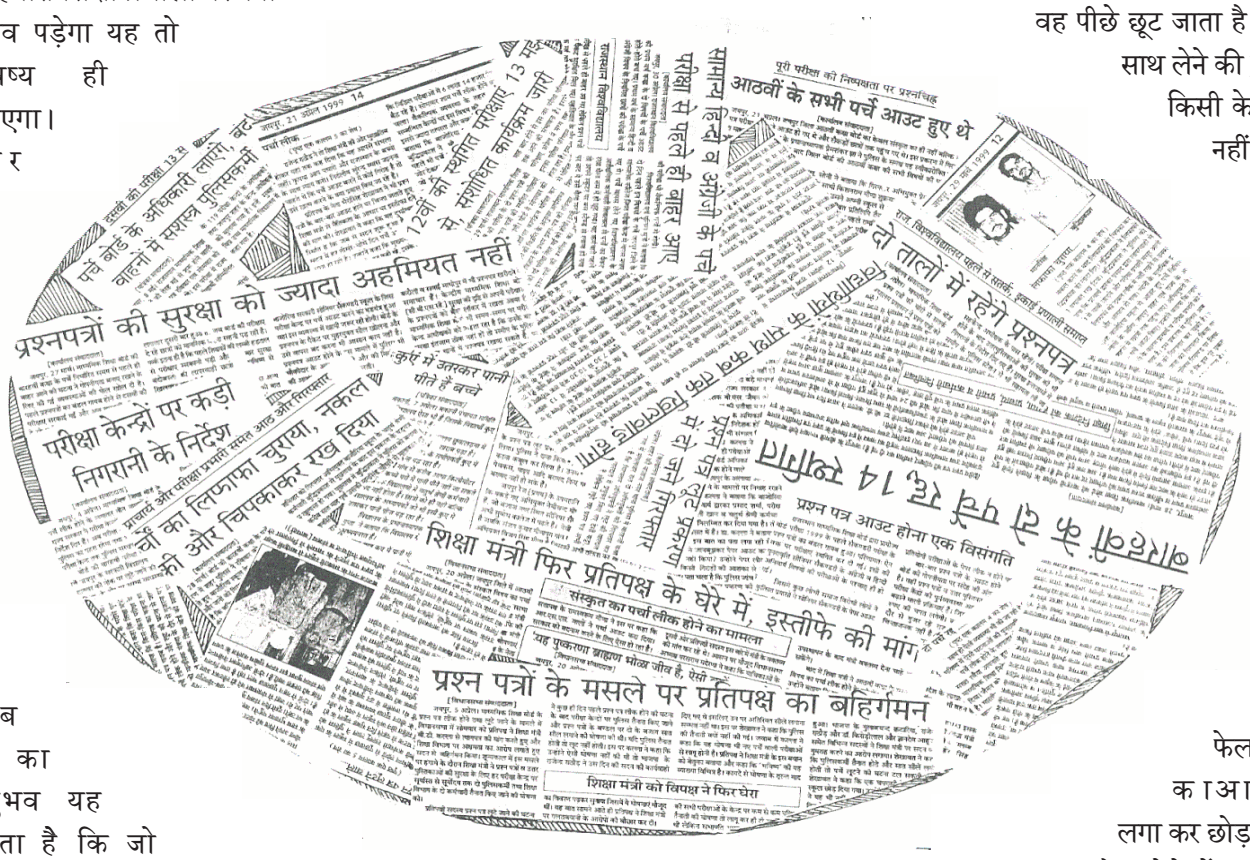

अब तक का अनुभव यह कहता है कि जो विद्यार्थी पहले दसवीं या बारहवीं कक्षा में जाकर रुकते थे वे अब आठवीं या उससे भी नीचे रोक लिए जाएगें । शेष सब कुछ वैसा ही चलता रहेगा। बोर्ड परीक्षा परिणाम अवश्य सुधर जाएगा। यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या शिक्षा का उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के परीक्षा परिणामों को अच्छा करना ही है या क्या माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की परीक्षा में अच्छी उपलब्धि सफल जीवन की गारन्टी है ।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली केवल रटन्त विद्या का परीक्षण कर पाती हैं । इस परीक्षा प्रणाली द्वारा प्राप्त प्रमाण-पत्र को बहुत अधिक महत्व देने के कारण सह-शैक्षिक गतिविधियां गौण होती चली गई हैं । इसके कारण शिक्षा का समाज व्यवस्था के साथ कोई संबंध नहीं है । शिक्षित व्यक्ति अपने समाज, अपनी संस्कृति से कट जाता है । शिक्षा का अर्थ व्यक्ति में जो कुछ है उसे उभारना है । क्या परीक्षा के भार से दबी वर्तमान शिक्षा प्रणाली ऐसा कर रही है? क्या बच्चे को अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ पाने की छूट वर्तमान कक्षा व्यवस्था में है ? आज हो यह रहा है कि जो धीरे चलता है वह पीछे छूट जाता है। उसे साथ लेने की फुर्सत किसी के पास नहीं है । अन्त में फेल होने का आरोप लगा कर छोड़ दिया जाता है । ऐसे में कुछ तो हिम्मत रखकर चलते रहते हैं, मगर अनेक बच्चे शिक्षा के मार्ग से अलग हो जाते हैं । बहुत बड़ी संख्या में 'ड्राप-आउट' होने का यह एक बड़ा कारण है ।

कोठारी आयोग ने इसी बात को बहुत अच्छी तरह समझा था। तभी तो आयोग ने कहा कि कुछ विषयों में पास तथा कुछ विषयों में फेल विद्यार्थी को पूर्णत: असफल कहना अनुचित है । आयोग ने सुझाव दिया था कि बोर्ड अपने प्रमाण-पत्र में केवल

उत्तीर्ण विषयों का ही उल्लेख करे । सम्पूर्ण परीक्षा में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण करने की परम्परा बन्द की जावे। आयोग का यह भी मानना था कि विद्यार्थी कितने विषयों की परीक्षा दे या नहीं, यह निर्णय करने का अधिकारी वह स्वयं होना चाहिए । दसवीं या बारहवीं की पढ़ाई के बाद परीक्षा में बैठना अनिवार्य नहीं हो, बिना परीक्षा दिये ही वह जाना चाहे तो जा सके । आगे की कक्षा में प्रवेश या नौकरी देने वाली संस्था चाहे तो अपनी आवश्यकतानुसार विद्यार्थी की जांच कर ले ।

1976 में राजस्थान के तत्कालीन शिक्षा मंत्री खेतसिंह राठौड़ की अध्यक्षता में बनी उच्च अधिकार प्राप्त समिति ने भी कोठारी आयोग के विचारों से सहमति व्यक्त की थी । समिति ने कहा था कि यदि विद्यार्थी एकाध या कुछ विषयों में अनुत्तीर्ण हो जाये तो उस पर पूर्णत: अनुत्तीर्ण होने की छाप नहीं लगाई जावे । समिति का मानना था कि अनुतीर्ण घोषित होने पर विद्यार्थी हताश हो जाता है जबकि आंशिक सफलता का आनन्द भी उसमें नए उत्साह तथा आस्था का निर्माण कर उसे आगे बढ़ते रहने को प्रेरित कर सकता है ।

अब यह प्रश्न उठना स्वभाविक ही है कि इतनी बड़ी समितियों ने गहन विचार विमर्श के बाद जो सुझाव दिए उन पर आज तक अमल क्यों नहीं हुआ। उत्तर यह है कि इस दिशा में किए गए हमारे सभी प्रयास अब तक बुरी तरह असफल रहे हैं । आपाधापी व हमारी भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति ने ऐसे किसी भी प्रयास को आगे नहीं बढ़ने दिया । जिस किसी को भी व्यक्तिगत मूल्यांकन का अवसर दिया गया उसने ईमानदारी का परिचय नहीं दिया या बहुमत के आगे नत-मस्तक होकर ईमानदारी छोड़ दी । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण विज्ञान वर्ग की प्रायोगिक परीक्षायें हैं । शत-प्रतिशत परिणाम व औसत 70 प्रतिशत अंक क्या वास्तव में विद्यार्थियों की उपलब्धि के द्योतक हैं ?

स्पष्ट है कि वर्तमान परीक्षा प्रणाली की बुराई से परिचित होने के बावजूद विकल्प के अभाव में हम इसे निरन्तर मजबूत किये जा रहे हैं । आठवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा इस बात की परिचायक है। इस परीक्षा से शिक्षा का कोई भला हो या नहीं हो मगर शिक्षा का व्यवसाय करने वालों की चांदी अवश्य हो जाएगी । पास-बुक्स, गैस पेपर्स, ट्यूशन, सिफारिश आदि का दायरा और बढ़ जाएगा। यह सब येन-केन प्रकारेण परीक्षा पास कर लेने, अच्छे अंक अपने नाम लिखा लेने की गर्ज से होगा।

स्वार्थी मनोवृत्ति व आपसी अविश्वास ने हमारे सार्वजनिक जीवन में आत्म-विश्वास को इतना कमजोर बना दिया है कि हम आंखों से दिखाई दे रहे सत्य को नकार कर कागज पर लिखी बात को सही मानने को मजबूर हैं ।

यही कारण है कि झूठे प्रमाण पत्रों के आधार पर सरकारी नौकरी पा गया व्यक्ति बीस वर्ष तक निष्कलंक सेवा कर लेता है। परेशानी तो तब आती है जब यह तथ्य सामने आता है कि प्रमाण-पत्र नकली थे । मगर भ्रष्ट तरीकों से प्राप्त असली प्रमाण-पत्रों के आधार पर जीवन भर मौज की जा सकती है । यही बिन्दु परीक्षा को महत्व प्रदान करने वाला भी है । परीक्षा एक पर्दे का काम कर रही है ।

आज हमारी आम मानसिकता यह है कि परीक्षा है तो शिक्षा है। हमारा संपूर्ण शिक्षा तन्त्र परीक्षा की धुरी पर घूम रहा है । शिक्षक वर्ग को भी अपने कार्य के मूल्यांकन का सरलतम उपाय परीक्षा परिणाम के रूप में ही कराने की आदत पड़ चुकी है । इससे अलग सोचने को कोई तैयार नहीं । बालक को अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ने देने के उद्देश्य से कोठारी आयोग की भावना के अनुरूप राजस्थान शिक्षा विभाग ने यह निर्णय लिया था कि चौथी कक्षा तक तक कोई फेल नहीं होगा । शिक्षक समुदाय ने विषय को गहराई से समझे बिना ही विरोध करना प्रारंभ कर दिया । कई ने तो पढ़ाना छोड़ दिया कि जब परीक्षा नहीं तो पढ़ाना कैसा ? आश्चर्य है कि आज शिक्षक समाज भी परीक्षा को साध्य व शिक्षा को साधन मानने लगा है ?

वर्तमान परीक्षा प्रमाण पत्रों की प्रासंगिकता एवं महत्व नौक़री दिलाने वाले अति आवश्यक दस्तावेजों के रूप में ही है । मगर शिक्षित बेरोजगोरों की बढ़ती भीड़ के कारण अब इन प्रमाण-पत्रों की चमक कुछ फीकी पड़ने लगी है। मगर यही प्रक्रिया अभी धीमी है। यह तय है कि सार्वजनिक क्षेत्र में नौक़रियों की उपलब्धता न्यून होने के साथ-साथ ये प्रमाण पत्र अपनी प्रासंगिकता खोते जाऐंगे। मगर तब तक बहुत नुकसान हो चुका होगा । आवश्यकता इस बात की है कि हम साहसिक निर्णय कर परीक्षा के भय से मुक्त शिक्षा प्रणाली का विकास करें । यह एक बहुत कठिन मार्ग है मगर हमें एक अच्छे समाज का निर्माण करना है । सही माने में देश का विकास करना है तो मेहनत तो करनी ही पड़ेगी । ◆